

सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी : संक्षिप्त आलोचना

प्रस्तुत आलोचनात्मक लेख में हम भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के महत्वपूर्ण घटक संगठन सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी की रणनीतिक लाइन, रणकौशल समेत प्रमुख बिंदुओं पर अपनी अवस्थिति रख रहे हैं। 'न्यू डेमोक्रेसी' मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को अपना मार्गदर्शक मानता है। यह संगठन नक्सलबाड़ी के दौरान का० चारू मजूमदार की वाम दुस्साहसवादी लाइन के खिलाफ संघर्ष का हिस्सा रहे का० सत्यनारायण सिंह व का० चंद्रपुल्ला रेड्डी की विरासत को आगे बढ़ा रहा है। यह दीर्घकालीन लोकयुद्ध के जरिये नव जनवादी क्रांति को सम्पन्न करना भारतीय क्रांति का रास्ता मानता है। यह पार्टी संगठन वर्ग शत्रु के सफाये की कार्यनीति को गलत मानते हुए 'प्रतिरोध संघर्ष' से होते हुए दीर्घकालीन लोकयुद्ध संचालित करने को ठीक समझता है।

'न्यू डेमोक्रेसी' की अखिल भारतीय पार्टी कांग्रेस 2004 द्वारा पारित प्रमुख दस्तावेजों तथा नवम्बर 2004 में सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी की दिल्ली राज्य कमेटी द्वारा जारी दस्तावेज 'प्रतिरोध संघर्ष के बारे में' को हम इस आलोचना का आधार बना रहे हैं। यह आलोचना इस उद्देश्य के साथ की जा रही है कि 'न्यू डेमोक्रेसी' भारतीय क्रांति की रणनीति के विवादास्पद मुद्दे में हमारी अवस्थिति से परिचित हो और वाद-विवाद में भागीदारी करे। इस तरह ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में मौजूद बिखराव को खत्म किया जा सकता है।

भारतीय क्रांति का कार्यक्रम तथा रणकौशल आज क्रांतिकारी कम्युनिस्ट खेमे में गम्भीर वाद-विवाद का प्रश्न बना हुआ है। भारतीय समाज की विशिष्टताएं और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण तथा बुनियादी महत्त्व के बदलावों ने इस वाद-विवाद को और भी ज्यादा गहरा दिया है। आज कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे के अधिकांश संगठन किन्तु-परन्तु के साथ इन बदलावों को स्वीकार करते हैं। भाकपा (माले)-पीपुल्स वार ने मार्च 2001 की अपनी कांग्रेस में यहां तक कहा था कि भारतीय दलाल नौकरशाह बुर्जुआ और भारतीय जनता के बीच अंतर्विरोध बुनियादी अंतर्विरोध बन गया है। नव जनवादी क्रांति को भारतीय क्रांति की मंजिल मानने वाले अन्य संगठन भी तमाम किन्तु-परन्तु के साथ भारतीय कृषि के पूंजीवादीकरण, तेजी से बदलते वर्गीय समीकरण, साम्राज्यवाद के साथ बदलते सम्बन्धों इत्यादि को संज्ञान में लेते हैं। हालांकि अभी तक किसी भी पार्टी संगठन ने अपनी इन स्वीकारोक्तियों को पीपुल्स वार की तरह किन्हीं नए निष्कर्ष तक नहीं पहुंचाया है। तब भी भारतीय समाज का पूंजीवादीकरण क्रांतिकारी खेमें में उठा-पटक मचा रहा है, यह सत्य सभी पार्टी संगठनों के दस्तावेजों से झांकता रहता है। पीपुल्स वार ने भी एम०सी०सी० से एकता के बाद आंदोलन में किसी भी तरह की आत्मालोचना या व्याख्या प्रस्तुत किए बगैर ही उपरोक्त बुनियादी अंतर्विरोध की अपनी प्रस्थापना से पल्ला झाड़ लिया। खैर... सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी न तो उन पार्टी संगठनों में है जो तथ्य और सत्य दोनों से किनाराकशी करते हुए जड़सूत्रों का जाप करते हैं; न ही उनमें है जो तथ्यों को तार्किक परिणति पर पहुंचाकर निष्कर्ष निकालते हैं। यह पार्टी संगठन खेमे के अधिकांश पार्टी संगठनों की तरह ही तथ्यों की जांच-परख करता है परन्तु निष्कर्ष निकालने की बारी में जड़सूत्रवादी रवैया अख्तियार कर लेता है।

सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी की अखिल भारतीय पार्टी कांग्रेस 2004 के दस्तावेज अंतर्विरोधों व विसंगतियों से भरे हुए हैं। ये असंगतियां व अंतर्विरोध इसी कारण हैं कि सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी भारतीय अर्थव्यवस्था के पूंजीवादी विकास को अर्द्धसामंती, अर्द्धऔपनिवेशिक के चौखटे में फिट करने की कोशिश करती है। साथ ही वह भारतीय बुर्जुआ को चीन के किस्म का दलाल (जिसके विभिन्न धड़ों के हित अलग-अलग साम्राज्यवादी मुल्कों के साथ बंधे हैं) घोषित करती है। यही वजह है कि समूचे दस्तावेजों में मौजूद विवरण तथा तत्पश्चात् निकाले गए निष्कर्षों में कोई साम्यता है ही नहीं। शायद भारतीय समाज के मूल्यांकन के दौरान जन्मे अंतर्विरोध ही वह वजह भी बनते हैं जिनकी वजह से 'न्यू डेमोक्रेसी' की यह पार्टी कांग्रेस अपने सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज 'अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्य' को पारित किये बगैर ही सम्पन्न हुयी। पार्टी कांग्रेस में मसविदा पारित किया गया और नौ माह बाद केन्द्रीय कमेटी ने 2005 में यह मूल दस्तावेज पारित किया। हालांकि सी०पी०आई० (एम० एल०)-न्यू डेमोक्रेसी की केन्द्रीय कमेटी हमें बताती है कि 'मसविदा तैयार किये जाने के बाद से अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थिति में हुए महत्वपूर्ण विकास के कारण पार्टी कांग्रेस ने केन्द्रीय कमेटी को निर्देशित तथा अधिकृत किया कि वह नये विकास को समाहित करे'। सच्चाई यह नहीं लगती क्योंकि समूचा विवरण व सूत्रीकरण पुराना ही है। जहां तक सूत्रीकरण की बात है तो वे दसियों साल पुराने हैं। हमारी समझ के हिसाब से भी अक्टूबर 2004 की आपकी इस पार्टी कांग्रेस से एक वर्ष पहले तक भी अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर के महत्वपूर्ण बदलाव नहीं हुए हैं। फिलहाल इस रहस्य से हम आगे बढ़ते हैं, दस्तावेजों के ढेर सारे रहस्यमय विवरण व सूत्रीकरण की ओर। सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी के प्रमुख दस्तावेजों के आधार पर कार्यक्रम, रणनीति, रणकौशल की आलोचना से पहले हम एक महत्वपूर्ण सवाल पर अपनी अवस्थिति रखना चाहते हैं। यह है कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के प्रति इस पार्टी संगठन का रवैया।

“कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों की एकता के लिए इस बात को दोहरा लेना आवश्यक है कि वे सभी लोग जिन्हें जनता नक्सलवादी कहती है, क्योंकि वे नक्सलवादी के बाद सीपीएम से टूटकर अलग हुए थे, इस एकता के दायरे में नहीं आते। विभाजन की स्पष्ट रेखाएं खींचनी आवश्यक हैं, जैसा कि लेनिन ने कहा था।”

(नीतिगत प्रस्ताव, अखिल भारतीय पार्टी कांग्रेस 2004 द्वारा स्वीकृत, पृष्ठ-14)

“कुछ संगठन ऐसे हैं जिन्होंने संशोधनवाद और संसदवाद को अपना लिया है। इनका सबसे प्रमुख उदाहरण लिबरेशन है। ऐसे भी संगठन हैं जिन्होंने नवजनवादी क्रांति के दौर को नकार दिया है, जैसे सीएलआई के हिस्से। ये हमारे एकता-प्रयासों के दायरे में नहीं आते।”

(वही, पृष्ठ-14)

उद्धरणों से स्पष्ट है कि सीपीआई (एमएल)-न्यू डेमोक्रेसी कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की एकता वार्ता के लिए विचारधारा के साथ-साथ कार्यक्रम व रणकौशल की सहमति भी जरूरी मानती है। ‘न्यू डेमोक्रेसी’ ने एकाधिक जगह एकता के लिए इन मापदण्डों को और ज्यादा स्पष्ट भी किया है। हमारा कहना है कि इन्हें अपने इन मापदण्डों को और स्पष्ट करना चाहिए साथ ही तर्क भी प्रस्तुत करने चाहिए। ‘न्यू डेमोक्रेसी’ का साफ तौर पर कहना है कि सीएलआई के विभिन्न धड़े इनके एकता प्रयासों के दायरे में नहीं आते, परन्तु इसका कारण नहीं बताया गया है। हमारा भी मानना है कि विचारधारा, कार्यक्रम व कार्यनीतिक दिशा के सवालों को ठण्डे बस्ते में डालकर कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच एकता सम्भव नहीं है। हमारा मानना यह भी है कि कार्यक्रम व कार्यनीतिक दिशा के सवालों को बहस-मुबाहिसे के जरिये हल किया जाना चाहिए। विचारधारा पर दृढ़ संकल्प व्यवहार होना एकता की बुनियादी शर्त होनी चाहिए, तत्पश्चात् कार्यक्रम, कार्यनीति समेत सभी महत्वपूर्ण मुद्दों को द्विपक्षीय या बहुपक्षीय वार्ताओं द्वारा हल किया जा सकता है। कार्यक्रम व कार्यनीतिक दिशा में व्याप्त ढेरों मतभेद ही आज कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की फूट व बिखराव के मूल में हैं। हमारा कहना है कि एकता के सवाल पर खेमे के जिन पार्टी संगठनों के ऊपर ‘न्यू डेमोक्रेसी’ संकीर्णतावादी रुख का इल्जाम लगाती है वह ठीक है मगर अपनी बारी में वह खुद उसी संकीर्णतावादी रुख का शिकार है।

I

अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थितियों का मूल्यांकन व निष्कर्ष

अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थितियों के मूल्यांकन व निष्कर्षों के बीच ‘न्यू डेमोक्रेसी’ के सभी दस्तावेजों में अंतर्विरोध व विसंगति स्पष्ट दिखायी पड़ती है। इसकी वजह साफ है। कृषि क्रांति को भारतीय क्रांति की धुरी मानने वाले कई संगठन भारतीय समाज में आ रहे बदलावों की जांच-पड़ताल कर तथ्यों को संज्ञान में लेने का काम ही नहीं करते। वे आंख मूंद लेते हैं और भारतीय क्रांति की रणनीति नव-जनवादी क्रांति की रट लगाते हैं। इनके लिए भारतीय समाज आज भी वहीं कदमताल कर रहा है जहां वह 1947-50 में था। इनके लिए राष्ट्रीय परिस्थितियों में किसी भी तरह के गुणात्मक बदलाव नहीं आए हैं। ‘न्यू डेमोक्रेसी’ अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थितियों में आए बदलावों को स्वीकार करती है मगर निष्कर्षों की बारी आते ही जड़सूत्रवादी रवैया अख्तियार कर लेती है। यहां यह भी कह देना ठीक होगा कि ‘न्यू डेमोक्रेसी’ अपने सभी दस्तावेजों में गहन तथ्यपरक विश्लेषण से बचने की भी कोशिश करती है।

भारतीय कृषि में आए बदलावों की चर्चा करते समय सीपीआई (एमएल)-न्यू डेमोक्रेसी दो महत्वपूर्ण बातें करती है। पहला, कि ‘कुछ हिस्सों में कुछ हद तक’ कृषि में पूंजीवादी तौर-तरीकों का विकास हुआ है। दूसरा, कि इस विकास के फलस्वरूप वर्गीय समीकरणों में भी बदलाव आया है। इस परिघटना के तथ्यपरक प्रस्तुतीकरण से यह पार्टी संगठन बचने का प्रयास करता है। ग्रामांचलों में वर्गीय समीकरणों में आए बदलावों की प्रकृति व उससे भारतीय क्रांति की रणनीति व रणकौशल में आए बदलावों का कोई जिक्र दस्तावेजों में नहीं है। यह किसी भी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन के लिए क्षम्य नहीं है कि वह वर्गीय समीकरणों में आये बदलावों का जिक्र करे और उन्हें सूत्रित करने का काम छोड़ दे। इस पर चर्चा हम आगे करेंगे।

अब देखें कि साम्राज्यवाद के साथ भारतीय शासक वर्ग के सम्बन्धों के बारे में ‘न्यू डेमोक्रेसी’ का मूल्यांकन किस तरह अंतर्विरोधों से भरा हुआ है। वैश्वीकरण, उदारीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से भारतीय शासकों के अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ सम्बन्धों में आए बदलावों को यह पार्टी संगठन नजरअंदाज नहीं कर पाता। अपने संक्षिप्त विवरण में भी वह अपने जड़सूत्रवादी निष्कर्षों की हिफाजत करने में असफल साबित हो जाता है।

“इन नीतियों का मकसद तीसरी दुनिया के देशों को महानगरीय साम्राज्यवादी देशों द्वारा शोषण के लिए ऐसा विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र बनाना था जो उनके लिए कम मूल्य का और श्रम प्रधान उत्पादन करें और इन देशों के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों का साम्राज्यवादी खुलकर शोषण कर सकें। इससे तीसरी दुनिया के देशों की नव औपनिवेशिक लूट व दोहन तेज हुआ है।”

(अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्य, जुलाई 2005, पृष्ठ-9, जोर हमारा)

“दूसरे विश्वयुद्ध के बाद समाजवादी देशों का एक विशाल शिविर अस्तित्व में आ चुका था और उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलन का जबरदस्त उभार था। ऐसे में साम्राज्यवाद ने राजकीय क्षेत्र का विकास करने और घरेलू उद्योगों की रक्षा के लिए आयात

शुल्क लगाने जैसी शर्तों के साथ सहमति जताई थी। कुछ लोगों ने इस परिवर्तन को गैर-औपनिवेशीकरण (डीकालोनाईजेशन) कहना शुरू कर दिया था, जबकि यह साम्राज्यवादी पूंजी की उस समय की रणनीति थी। मुनाफे की घटती दर, अति उत्पादन के बढ़ते संकट से ग्रसित तथा समाजवादी देशों के पतन का फायदा उठाते हुए साम्राज्यवादी पूंजी दुनिया के हर देश में अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बेरोक-टोक प्रवेश को सुनिश्चित करने के लिए प्रयासरत है।” (वही, पृष्ठ-13, जोर हमारा)

“संग्रह सरकार भारत को अमेरिकी साम्राज्यवाद की विश्व रणनीति में कनिष्ठ सहभागी बना रही है”

(वही, पृष्ठ-43, जोर हमारा)

उपरोक्त उद्धरणों में स्पष्ट है कि ‘न्यू डेमोक्रेसी’ स्वीकार करती है कि ‘90 के दशक के बाद से अमरीकी साम्राज्यवाद ने ज्यादा आक्रामक तेवर अपना लिये हैं। वह स्वीकार करती है कि तीसरी दुनिया की नव औपनिवेशिक लूट व दोहन तेज हुआ है। आगे हम देखेंगे कि किस तरह ‘न्यू डेमोक्रेसी’ तीसरी दुनिया की सम्प्रभुता पर हो रहे साम्राज्यवादी हमले को भी न सिर्फ संज्ञान में लेती है बल्कि अपनी गहरी चिंता भी जाहिर करती है।

हमारा कहना है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तीसरी दुनिया के शासक वर्गों के साम्राज्यवाद के साथ सम्बन्धों में आए बदलावों को ‘साम्राज्यवादी पूंजी की उस समय की रणनीति’ बताना समूचे इतिहास को साम्राज्यवाद की कठपुतली बताना तो है ही, यह समाजवाद व राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को भी साम्राज्यवाद के सामने बौना बना देना है। आपके हिसाब से तो साम्राज्यवाद के उदय के बाद से आज तक का तीसरी दुनिया का विकास मात्र साम्राज्यवादी पूंजी की रणनीति का हिस्सा भर है। तीसरी दुनिया की जनता के संघर्षों व विश्व सर्वहारा क्रांति ने सिर्फ इतना किया कि साम्राज्यवाद व तीसरी दुनिया के ‘दलाल’ शासकों की रणनीति में बदलाव भर ला दिया। तब आपको 1990 के बाद में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में आए बदलावों को भी साम्राज्यवादी पूंजी की आज की रणनीति घोषित कर देना चाहिए। बात अगर मात्र साम्राज्यवाद की रणनीति में आए बदलाव भर की है तो फिर तीसरी दुनिया के देशों की लूट व दोहन कम या ज्यादा होने का सवाल ही पैदा नहीं होता, क्योंकि आपके अनुसार तीसरी दुनिया का शासक वर्ग साम्राज्यवाद का दलाल है। दलाल के हित साम्राज्यवाद के साथ नथी होते हैं, उसका वजूद पूर्णतः साम्राज्यवादी आका पर टिका होता है। न तो साम्राज्यवाद और न ही उस पर आश्रित दलाल शासक ही अपनी लूट व दोहन में बिना वजह कोई कमी करना चाहेंगे। उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। और ऐसा ही हुआ। आपके वर्णन के अनुसार ही दूसरे विश्वयुद्ध के बाद समाजवादी खेमे की मौजूदगी और उपनिवेशवाद-विरोधी आन्दोलन के जबरदस्त उभार की वजह से साम्राज्यवाद बाध्य हुआ कि घरेलू उद्योगों की रक्षा के लिए आयात शुल्क लगाने और राजकीय क्षेत्र का विकास करने की तीसरी दुनिया के शासकों की शर्तों को स्वीकार करे। आप कहते हैं यह साम्राज्यवादी पूंजी की उस समय की रणनीति थी।

इस रणनीति की अंतर्वस्तु क्या थी? आप इस सवाल को गोल कर जाते हैं। क्योंकि सवाल का सामना करते ही आप यह कहने से नहीं बच सकेंगे कि यह गैर-औपनिवेशीकरण की ही प्रक्रिया थी, चाहे यह प्रक्रिया किसी भी हद तक और किसी भी गति से चली हो। दूसरे विश्व युद्ध के बाद समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों ने साम्राज्यवाद को इस हद तक कमजोर किया कि उसे पीछे हटना पड़ा। उसे अपने शोषण के तौर-तरीकों में बदलाव लाना पड़ा। उसे खुद को नये राजनीतिक आधार पर स्थापित करना पड़ा। साम्राज्यवाद को कमजोर करने वाले ये कारक विभिन्न रूपों में लम्बे समय तक बने रहे। 1956 में सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद भी चीन समाजवादी देश बना रहा और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष जारी रहे। सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद के उदय ने अंतर्राष्ट्रीय अंतर्विरोधों को तीखा करके साम्राज्यवादी प्रभुत्व को कमजोर किया और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के लिए बेहतर स्थितियां बनाए रखीं। तीसरी दुनिया के शासकों के लिए गृह बाजार के संरक्षण व साम्राज्यवाद के साथ सौदेबाजी की बेहतर स्थितियां बनाए रखीं और अपनी राजनीतिक आजादी को क्रमशः मजबूत करते जाने का अवसर दिया।

इन विश्व परिस्थितियों में साम्राज्यवाद के पीछे हटने, उसके उपनिवेश से नव उपनिवेश पर पीछे हटने को महत्त्वहीन मानना, यह मानना कि साम्राज्यवाद के पीछे हटने से उसके प्रभुत्व में कोई कमी नहीं आयी; कि तीसरी दुनिया के शासकों ने इन स्थितियों का कोई भी लाभ नहीं लिया; एक गैर-ऐतिहासिक नजरिया है। अगर साम्राज्यवाद के प्रभुत्व का उस समय कमजोर होना अपने साथ में पूरी दुनिया में बुनियादी महत्व के बदलावों को नहीं लाया तो फिर साम्राज्यवाद ने तीसरी दुनिया के शासकों के साथ ऐसी शर्तों पर सहमति ही क्यों जतायी जो उनकी पूंजी के लिए बाधायेँ खड़ी करती थीं और साम्राज्यवाद को राजनीतिक तौर पर भी कमजोर बनाती थीं।

ऐसा नहीं है कि तीसरी दुनिया के शासकों के साम्राज्यवाद के साथ सम्बन्धों में बदलावों को ‘न्यू डेमोक्रेसी’ नहीं स्वीकारती। वह तो बस इससे रणनीतिक महत्त्व के निष्कर्ष निकालने से बचना चाहती है। इसीलिए जाने-अनजाने वह संग्रह सरकार पर यह आरोप लगाती है कि वह भारत सरकार को अमरीकी साम्राज्यवाद की विश्व रणनीति में कनिष्ठ सहभागी बना रही है। ऐसा नहीं है कि ‘न्यू डेमोक्रेसी’ यह नहीं जानती कि दलाल और कनिष्ठ सहभागी में कोई अंतर नहीं है। बल्कि उसके सामने समस्या तब खड़ी होती है, जब वह वैश्वीकरण की मुहिम के बाद साम्राज्यवाद व तीसरी दुनिया के देशों के बीच पुनः बदले हुए सम्बन्धों को देखती है, वह हैरान-परेषान हो जाती है। क्योंकि आप यह नहीं कह सकते कि 1947 से पहले भारत का शासक वर्ग ज्यादा दलाल था, 1947 के बाद साम्राज्यवाद ने उससे इस तरह के सम्बन्ध बनाये कि वह कम दलाल रह गया और 1990 के बाद वह पुनः ज्यादा दलाली करने लगा। यह कहना हास्यास्पद होगा।

अगर 'न्यू डेमोक्रेसी' स्वीकार कर ले कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवाद के विभिन्न कारणों से कमजोर होने के चलते जहां एक ओर उपनिवेशों का आजाद होना आसान हुआ वहीं दूसरी ओर आजाद हुए उपनिवेशों को वह परिस्थितियां मिलीं जिसमें वे साम्राज्यवाद पर कई तरह की पाबंदियां लगाकर अपना विकास कर सके। पहले समाजवाद तथा बाद में सामाजिक साम्राज्यवाद की उपस्थिति ने तीसरी दुनिया के शासकों की सौदेबाजी की ताकत को बढ़ाया। इसका फायदा उठाकर इन्होंने अपने घरेलू बाजार को संरक्षित कर पूंजीवादी विकास किया। अपनी राजनीतिक आजादी को सुदृढ़ किया। और अब जबकि हाल-फिलहाल अमरीकी साम्राज्यवाद की ताकत व आक्रामकता बढ़ी है तब पुनः इन सम्बन्धों में बदलाव आ रहे हैं और अब ये साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था में एकाकार हो रहे हैं। इस समय भी यह एकीकरण साम्राज्यवाद की शर्तों पर और आसानी से नहीं हो रहा है। हालांकि इसमें साम्राज्यवाद प्रभुत्वशाली स्थिति में है। एक स्वतंत्र पूंजीपति वर्ग की हैसियत से उनके साम्राज्यवाद के साथ ढेरों अंतर्विरोध हैं और ये अपने हितों के लिए साम्राज्यवाद के साथ संघर्षरत हैं। क्या आप कहना चाहेंगे कि यह दलाल का अपने मालिकों से संघर्ष है? दलाल जिनका कि वजूद ही अपने साम्राज्यवादी आकाओं की दलाली पर टिका है। आज जब तीसरी दुनिया का शासक वर्ग ढेरों अंतर्विरोधों के साथ साम्राज्यवाद के साथ अपने हितों के लिए संघर्षरत है तब 'न्यू डेमोक्रेसी' भी इन तथ्यों को अन्देखा नहीं कर पा रही है। विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया से गुजर चुका स्वतंत्र परंतु कमजोर पूंजीपति वर्ग उसके दस्तावेज में दिखायी देता है, साम्राज्यवाद के लिए बाधाये खड़ी करता हुआ।

“तीसरी दुनिया के देशों के विरुद्ध आर्थिक हमले को तेज करने के साथ-साथ अमेरिकी साम्राज्यवाद, अन्य साम्राज्यवादी ताकतों की सहमति से तीसरी दुनिया के देशों को अपनी रक्षा क्षमताएं विकसित करने से रोक रहा है और तीसरी दुनिया के उन देशों को अपना विशेष निशाना बना रहा है जो उसकी ताल पर नहीं नाच रहे हैं। इस मकसद के लिए वह उत्तरी कोरिया और ईरान को निशाना बना रहा है। साम्राज्यवादी देश तीसरी दुनिया के देशों पर पक्षपातपूर्ण सी०टी०बी०टी० (आणविक परीक्षण प्रतिबंध संधि) थोपने का प्रयास कर रहे हैं।”

(वही, पृष्ठ-15, जोर हमारा)

उपरोक्त विवरण में दिखायी देता है कि '90 के दशक में अमरीकी साम्राज्यवाद और तीसरी दुनिया के शासक वर्ग के सम्बन्धों में बदलाव आ रहे हैं। अमरीकी साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया के देशों के साथ और ज्यादा प्रभुत्व के सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है और वे आसानी से ऐसा नहीं होने दे रहे हैं। यानी अब बदली हुयी विश्व परिस्थिति में अमरीकी साम्राज्यवाद अन्य साम्राज्यवादी देशों की सहमति से तीसरी दुनिया के देशों को अपनी रक्षा क्षमताएं विकसित करने से रोक रहा है। उत्तरी कोरिया और ईरान के शासक अमरीकी साम्राज्यवाद का विशेष निशाना इसलिए हैं कि वह उसके प्रभुत्व को अपने हितों की बलि चढ़ाने की हद तक स्वीकारने को तैयार नहीं है। 'न्यू डेमोक्रेसी' का उपरोक्त उद्धरण इस बात की पुष्टि करता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की विश्व परिस्थितियों में तीसरी दुनिया के शासकों ने साम्राज्यवादी व्यवस्था का अंग बने रहते हुए भी सम्प्रभुता हासिल की और आज जब पुनः साम्राज्यवाद अपने लिए अनुकूल परिस्थितियों में उनकी राजनीतिक आजादी को कम करने का प्रयास करना चाहता है तो वे इसे स्वीकार नहीं कर रहे हैं बल्कि इसका तीखा विरोध कर रहे हैं।

सहाम हुसैन ने इस राजनीतिक आजादी को बचाये रखने की कीमत स्वयं एक विध्वंसकारी युद्ध में तबाह होकर चुकायी। ईरान, उत्तरी कोरिया, सहाम का हथ्र देखकर भी अमरीकी साम्राज्यवाद को चुनौती दे रहे हैं। तीसरी दुनिया के कई देश 'आणविक परीक्षण प्रतिबंध संधि' को स्वीकार नहीं कर रहे हैं। कुल मिलाकर तीसरी दुनिया के देशों के शासक वर्ग अपनी रक्षा क्षमताओं को बढ़ा रहे हैं और बढ़ाना चाहते हैं। साम्राज्यवाद यह नहीं चाहता। वह इसके लिए धमकी से लेकर युद्ध तक के तौर-तरीके अपनाते हैं बाध्य हो रहा है। यहां हम तीसरी दुनिया के शासक वर्गों की इस सम्बन्ध में अलग-अलग अवस्थिति व उसके कारणों की चर्चा नहीं कर रहे हैं। क्या उपरोक्त अंतर्विरोध यह नहीं दिखाते कि साम्राज्यवाद व तीसरी दुनिया के शासकों के सम्बन्ध दलाल-मालिक के नहीं हैं? हां इन सम्बन्धों में गैरबराबरी जरूर है और एक हद तक यह गैरबराबरी साम्राज्यवादी मुल्कों के आपसी सम्बन्धों में भी मौजूद है।

इन तथ्यों को स्वीकार करके भी दलाल-मालिक सम्बन्धों की अपनी प्रस्थापना पर अड़े रहना तथ्यों से मुंह चुराना ही है। अब आगे देखें कि 'न्यू डेमोक्रेसी' अपने मूल्यांकन में तीसरी दुनिया के शासक वर्ग एवं भारतीय बुर्जुआ के साम्राज्यवाद के साथ अंतर्विरोधों की तीक्ष्णता को किस रूप में चिह्नित करती है।

“नवम्बर 1999 को सीएटल में मंत्रीस्तरीय बैठक के मौके पर विश्व व्यापार संगठन का विरोध करने के लिए विशाल जनसमूह उमड़ पड़ा और इस असफलता में सीएटल में हुए जनविरोध की भूमिका तो थी ही, साम्राज्यवादी देशों के आपसी अंतर्विरोध और तीसरी दुनिया के देशों के विरोध की भी भूमिका थी।”

(वही, पृष्ठ-21, जोर हमारा)

“दोहा में राजग सरकार ने राष्ट्रीय हितों के साथ गह्वारी की और साम्राज्यवादियों के सम्मुख आत्मसमर्पण करके वह विश्व व्यापार संगठन की वार्ता के नए दौर पर सहमत हो गई।

(वही, पृष्ठ-37)

“जो क्षेत्र पहले घरेलू पूंजीपतियों के लिए आरक्षित थे उन्हें विदेशी पूंजी के लिए खोल दिया गया है”

(वही, पृष्ठ-31)

'न्यू डेमोक्रेसी' विश्व व्यापार संगठन की वार्ताओं में तीसरी दुनिया के शासकों के विरोध की मौजूदगी को इस हद तक स्वीकार करती है कि वह 1999 की सीएटल बैठक की असफलता में इसे भी एक महत्वपूर्ण कारक मानती है। आप राजग से नाराज हैं कि उसने राष्ट्रीय हितों के साथ गह्वारी की और वह दोहा में विश्व व्यापार संगठन की वार्ताओं के नए दौर पर सहमत हो गयी। आप की नाराजगी स्वाभाविक है। भारतीय शासक वर्ग साम्राज्यवाद के साथ ज्यादा एकाकार हो रहे हैं। अपने हितों के लिए राष्ट्रीय हितों से गह्वारी कर रहे हैं और राष्ट्रीय

सम्प्रभुता को कमजोर कर रहे हैं। मगर आपको नाराज होने का हक तभी है जब आप यह मानें कि पहले वह राष्ट्रीय हितों के साथ गह्वारी नहीं कर रहा था, कि पहले वह साम्राज्यवाद के साथ आज की तुलना में कम गैरबराबरी के रिश्ते में बंधा था। आपको स्वीकारना होगा कि सीएटल से दोहा तक का सफर सौदेबाजी का सफर है जिसमें '90 के दशक में हाल-फिलहाल साम्राज्यवाद के हावी होने और अपने संकट को हल करने के लिए तीसरी दुनिया के देशों के खिलाफ आक्रामक हो जाने से तीसरी दुनिया पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व बढ़ा है।

जैसा कि 'न्यू डेमोक्रेसी' स्वीकारती है कि आज घरेलू पूंजीपतियों के लिए आरक्षित उद्योगों को विदेशी पूंजीपतियों के लिए खोला जा रहा है। राष्ट्रीय हितों के साथ गह्वारी की जा रही है। इसमें अंतर्निहित है कि पहले ऐसा नहीं था यानी 1947 से '91 तक का दौर ऐसा नहीं था। तब वह क्या था? वह भारतीय पूंजीपति वर्ग के हितों के अनुरूप अर्थव्यवस्था के दरवाजे साम्राज्यवाद के लिए बंद करने का दौर था। 1947 से लेकर '91 तक का दौर साम्राज्यवाद से पूर्ण विच्छेद का दौर नहीं था। भारतीय शासक वर्ग ने कभी भी साम्राज्यवाद के साथ पूर्ण आर्थिक व राजनीतिक विच्छेद नहीं किया। भारतीय शासक वर्ग के साथ साम्राज्यवाद के सम्बन्ध हमेशा से गैरबराबरी के रहे हैं जिनमें साम्राज्यवाद हावी रहा है। मगर यह सम्बन्ध साम्राज्यवाद पर आश्रित दलाल के कभी नहीं रहे।

भारत के पूंजीपति वर्ग ने विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को कभी भी तार्किक परिणति पर नहीं पहुंचाया। न ही वह ऐसा कर सकता था। उसने अपने समझौतापरस्त चरित्र के अनुरूप साम्राज्यवाद के साथ सम्बन्ध रखे। तत्कालीन विश्व परिस्थितियों का फायदा उठाते हुए उसने देश के भीतर पूंजीवादी विकास तथा अपनी राजनीतिक आजादी सुदृढ़ करने के लिए साम्राज्यवाद के साथ सौदेबाजी व संघर्ष किया। इसने जहां एक ओर साम्राज्यवादी पूंजी के भारत में प्रवाह के रास्ते में कई बाधाएँ खड़ी कीं, वहीं दूसरी ओर समाजवादी चीन को भी मान्यता दी। आज जब यह साम्राज्यवाद के साथ ज्यादा एकाकार हो रहा है तो इसमें भी इसके हित हैं। आज भी भारत में पूंजी की लूट का ज्यादा बड़ा हिस्सा भारतीय बुर्जुआ की जेब में जाता है। और विश्व पैमाने पर यह साम्राज्यवाद का कनिष्ठ सहभागी ही है।

अब 'न्यू डेमोक्रेसी' की दिक्कत यह है कि वह विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को तो सिरे से नकारती है मगर जब विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को बीच में छोड़कर भारतीय बुर्जुआ साम्राज्यवाद से ज्यादा एकीकरण करता है तो उसे दिक्कत होती है। तथ्य उसे परेशान करते हैं। यह इतना हास्यास्पद लगता है कि दलाल से यह शिकायत कि वह दलाली कर रहा है। बात इतने पर ही नहीं रुकती, पहले से तय निष्कर्षों की अंधभक्ति में 'न्यू डेमोक्रेसी' एक अन्य प्रस्थापना भी प्रस्तुत करती है कि भारत का शासक वर्ग चीनी दलाल बुर्जुआ की ही तरह विभिन्न धड़ों में बंटा है। ये धड़े अपने हितों के अनुरूप अलग-अलग साम्राज्यवादी ताकतों के वफादार हैं। इसका कोई भी ठोस आधार यह पार्टी संगठन हमें नहीं बताता। इसके उलट इसका मूल्यांकन इस निष्कर्ष को खण्डित ही करता है।

हम जानते हैं कि क्रांति पूर्व चीन एक अर्द्ध औपनिवेशिक समाज था। जहां पर कई साम्राज्यवादी ताकतें प्रतियोगिता में थीं। इनका सामाजिक आधार थे प्रतिक्रियावादी सामन्त और दलाल नौकरशाह बुर्जुआ। माओ हमें बताते हैं कि दलाल बुर्जुआ के ये विभिन्न धड़े अलग-अलग साम्राज्यवादी मुल्कों के पैरोकार थे, उनके हितों की हिफाजत करते थे। 'न्यू डेमोक्रेसी' चीन की इस विशिष्ट परिघटना से सामंजस्य बैठाती है।

“अर्द्धसामंती व अर्द्धऔपनिवेशिक भारत में, बड़े पूंजीपति, बड़े जमींदार शासक वर्गों की, जिनका साम्राज्यवाद के साथ गठजोड़ है, कई राजनीतिक पार्टियां हैं, जो इन वर्गों के हितों की हिफाजत करती हैं और जिनका वर्ग चरित्र एक जैसा है। लेकिन इन पार्टियों का विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों की तरफ रुझान अलग रहता है, उनका सामाजिक जन आधार अलग-अलग तबकों में है और अलग-अलग मसलों पर उनका नजरिया भी अलग-अलग है।”

(नीतिगत प्रस्ताव, अ०भा०पा०कां० 2004 द्वारा स्वीकृत, पृष्ठ-18, जोर हमारा)

“कभी-कभी साम्राज्यवादियों के आपसी मतभेदों के चलते, उनके आपसी मतभेद काफी गंभीर हो जाते हैं। वे आपस में खुलेआम लड़ती हैं और लोगों को भी सड़कों पर ले आती हैं। सत्तारूढ़ गुट कड़े दमन का सहारा लेता है, फासीवादी दमन के तरीके भी इस्तेमाल करता है जैसा कि इमरजेंसी के दौरान किया गया। ऐसी स्थिति में शासक वर्गों के हिस्से एक-दूसरे के खिलाफ आमने-सामने खड़े हो जाते हैं और एक दूसरे को सत्ता से हटाने के लिए जनता को गोलबंद करते हैं।” (वही, पृष्ठ-19)

उपरोक्त उद्धरणों को पढ़कर यही कहा जा सकता है कि सावन के अंधे को सब कुछ हरा-हरा दिखायी देता है। क्या आप बतायेंगे कि आज भारत की जितनी भी राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर की पार्टियां हैं उनमें से कौन सी किस साम्राज्यवादी मुल्क के दलालों का प्रतिनिधित्व करती है। आप इसके तथ्य देने से क्यों बचना चाहते हैं। माओ ने यह काम नहीं किया था उन्होंने स्पष्ट बताया था कि चीन में मौजूद दलाल बुर्जुआ का कौन सा गुट किस साम्राज्यवादी ताकत की सेवा करता है। माओ का दलाल अपनी वफादारी को दूसरे अन्य साम्राज्यवादी गुट के लिए बदलता भी नहीं था। हमें आपके निष्कर्षों में साफगोई नहीं दिखायी देती। तथ्य या तो आपके पास हैं ही नहीं या आप खुद ही समझ नहीं पा रहे हैं कि इस निष्कर्ष का व्यावहारिक प्रतिफलन क्या है? अब दूसरी तरफ आपके मूल्यांकन को देखें तो निष्कर्ष में मौजूद विसंगति साफ दिखायी देती है।

“इन नीतियों के प्रभावों के विरुद्ध जनता का गुस्सा केन्द्र व राज्यों में सत्तारूढ़ पार्टियों की हार में देखा जा सकता है। पर, शासक वर्गों की पार्टियों के बीच इन नीतियों पर ऐसी एकता है कि उत्तरोत्तर सरकारें इन्हें लागू करने में एक-दूसरे को पीछे छोड़ने की कोशिश करती हैं।”

(अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्य-2005, पृष्ठ-31, जोर हमारा)

“शासक वर्गों की पार्टियों के विभिन्न धड़ों— उनके दक्षिणपंथी, मध्यममार्गी तथा वाम धड़ों के बीच विशेषकर साम्राज्यवाद की सेवा; नई आर्थिक नीतियों; बड़े पूंजीपतियों, बड़े सामन्त वर्गों के हितों की रक्षा; राष्ट्रीय उग्रवाद व राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के संघर्ष का विरोध तथा पड़ोसी देशों के प्रति दादागिरी का रवैया जैसे मुद्दों पर मूल सहमति है।”

(वही, पृष्ठ-45, जोर हमारा)

“आर्थिक नीतियों के सवाल पर मूल दिशा पर उनका कोई मतभेद नहीं है, परंतु आर्थिक सुधारों की रफ्तार और विशिष्ट कदमों पर वे मतभेद उठाते रहते हैं।”

(वही, पृष्ठ-49)

“ये दल साम्राज्यवाद-समर्थक नीतियों और शासक वर्गों के बीच आम सहमति के दायरे में ही काम करते हैं। राष्ट्रोन्माद भी इनमें से एक है। तब भी, जिस समुदाय या क्षेत्र का वे प्रतिनिधित्व करते हैं सत्ता में उनके अभिजात्यों की साझेदारी पर उनके मतभेद हैं।”

(वही, पृष्ठ-51)

उपरोक्त उद्धरणों में सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी बताती है कि नई आर्थिक नीतियों को लेकर भारतीय शासक वर्गों की पार्टियों के बीच इतनी गजब की एकता है कि जो भी सरकार में पहुंचती है वही पहले से ज्यादा बढ़-चढ़ कर इन्हें लागू करने की लगन दिखाती है। इतना ही नहीं, सभी क्षेत्रीय दल भी साम्राज्यवाद समर्थक नीतियों में शासक वर्गों के साथ आम सहमति रखते हैं। हम उपरोक्त बातों से सहमत हैं। 1991 में नई आर्थिक नीति की तरफ कदम बढ़ाने के बाद से कौन सा राष्ट्रीय दल रह गया है जिसने सरकार में किसी न किसी रूप में भागीदारी न की हो? और आप ही के अनुसार सभी दल अमरीकी साम्राज्यवाद परस्त नीतियों के घनघोर समर्थक हैं, यहां तक कि क्षेत्रीय दल भी।

यथार्थ से अपने निष्कर्ष का तालमेल बैठाने के लिए ‘न्यू डेमोक्रेसी’ एक कपोल कल्पना करती है कि जब साम्राज्यवाद के आपसी अंतर्विरोध तेज होते हैं तो तीसरी दुनिया के देशों की शासक वर्गीय पार्टियों के अंतर्विरोध भी अलग-अलग साम्राज्यवादी देशों के साथ खेमेबन्दी के स्तर तक भड़क जाते हैं। यानी तब यह अपने आका देश के साथ एकजुट होकर आपसी संघर्ष में उलझ जाते हैं। ‘न्यू डेमोक्रेसी’ द्वारा गढ़ा गया यह सूत्र आपातकाल के घटनाक्रम को देखने का चश्मा बन जाता है। मगर आगे-पीछे यह इसकी कोई मदद नहीं करता। साम्राज्यवाद की मौजूदगी के समय से ही अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोध मौजूद रहे हैं। हां उनकी तीक्ष्णता अलग-अलग समय में अलग-अलग रही है। दो विश्वयुद्धों में इस अंतर्विरोध ने चरम परिणति पायी है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद करीब ढाई दशक तक अमरीकी साम्राज्यवाद का निर्विवाद प्रभुत्व रहा है। 1968-70 में सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद के उदय के बाद से साम्राज्यवादी खेमा पुनः तीखे अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोध का शिकार रहा है। 1970 के आते-आते तो जापान और यूरोप के अपने पैरों पर खड़ा होते ही अमरीकी प्रभुत्व के लिए चुनौती और ज्यादा बढ़ गयी। सोवियत साम्राज्यवाद के पतन के बाद भी अमरीका पुरानी प्रभुत्वकारी स्थिति पुनः प्राप्त नहीं कर सका। हालांकि अपनी आर्थिक व खासकर सामरिक ताकत के कारण उसकी नेतृत्वकारी भूमिका लगातार बनी रही है। आज ‘विश्व व्यापार संगठन’ का गठन कर सभी साम्राज्यवादी देश अपनी समान नीतियों के साथ एकजुट हैं मगर उनमें घमासान भी है। ‘विश्व व्यापार संगठन’ ने अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोध को खत्म नहीं किया है। आज भी साम्राज्यवादी देशों के मध्य तीखे अंतर्विरोध मौजूद हैं।

आज साम्राज्यवादी देशों के बीच जिस भी स्तर पर अंतर्विरोध मौजूद हैं, क्या उस स्तर पर भी भारतीय शासक वर्ग के बीच अंतर्विरोध दिखायी पड़ते हैं। आपकी प्रस्थापना के अनुसार साम्राज्यवाद आज हाल-फिलहाल तीखे अंतर्विरोधों का शिकार नहीं है इसलिए शासक वर्गों की पार्टियां अमरीकी साम्राज्यवाद परस्त नीतियों को लेकर एक हैं। क्या आप बतायेंगे कि द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत में दलाल बुर्जुआ के विभिन्न धड़े घमासान क्यों नहीं कर रहे थे। '56 से लेकर '89 तक कौन-कौन सी पार्टियां किस साम्राज्यवादी ताकत के साथ लामबन्द होकर संघर्षरत थीं। और यह भी काबिलेगौर है कि कांग्रेस पार्टी जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की दलाल थी कैसे अमरीकी, बाद में रूस व पुनः अमरीकी साम्राज्यवाद की दलाल हो गयी। आपके पास इन सवालों के कोई भी जवाब नहीं हैं।

माओ यह नहीं बताते। उनके अनुसार चीन में बुर्जुआ वर्ग के बीच जापान-परस्त हिस्सा, यूरोप परस्त हिस्सा व अमरीका परस्त तीन विभाजन है। उनका साफ कहना है कि ये हिस्से अपने साम्राज्यवादी आका के साथ वफादारी से खड़े रहकर दूसरे हिस्सों के साथ संघर्ष करते हैं। अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोध के बहुत तेज होने व क्रांति के प्रकार का लक्ष्य मुख्य रूप से कोई एक साम्राज्यवादी देश के बन जाने की स्थिति में तो माओ दूसरे साम्राज्यवादी देशों की सेवा कर रहे दलाल बुर्जुआ के हिस्सों के, कुछ समय के लिए, एक हद तक, साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे में शामिल हो जाने तक की सम्भावना देखते हैं। माओ का दलाल बुर्जुआ अपने साम्राज्यवादी आका की हर हाल में सेवा करता है। वह अपने आका के कमजोर पड़ने पर अन्य साम्राज्यवादी मुल्क की सेवा नहीं करने लगता।

‘न्यू डेमोक्रेसी’ को तथ्यों से मुंह चुराकर निष्कर्षों से चिपके रहने या नयी प्रस्थापनायें गढ़ने के बजाय सीधे-सीधे यही स्वीकार करना चाहिए कि भारत का पूंजीपति वर्ग घरेलू व विदेश नीति के मामले में मूलतः एकजुट है। साम्राज्यवाद के किसी भी रूप में कमजोर होने की हालतों में यह वैश्विक परिस्थिति का लाभ उठाकर अपने लिए ज्यादा बेहतर स्थितियां हासिल करता है। वह अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोधों का इस्तेमाल भी साम्राज्यवाद के साथ सौदेबाजी के लिए ही करता है। भारतीय शासक वर्ग ने 1947 से लेकर अब तक यही किया है। भारतीय शासक 1947 के बाद समाजवादी खेमे व साम्राज्यवाद के बीच अंतर्विरोध का इस्तेमाल कर अपनी स्थिति को मजबूत बनाते रहे। इसके लिए उन्होंने समाजवाद का नारा लगाया; हिंदी चीनी भाई-भाई का नारा लगाया; जी-77, जी-15, इत्यादि मंचों का हिस्सा बने और गुटनिरपेक्ष का

नारा लगाया। उसने ब्रिटिश से सोवियत फिर अमरीकी साम्राज्यवाद को अपना मालिक चुना। उसने साम्राज्यवादी पूंजी के प्रवाह में बाधाये खड़ी कीं और परमाणु परीक्षण कर अपने आका के प्रतिबंध भी झेले फिर उससे असैन्य परमाणु समझौता भी किया है।

इन सभी नीतियों को लेकर भारत का समस्त शासक वर्ग व उसकी विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के मतभेद नहीं हैं। विगत वर्षों में जब इन राजनीतिक पार्टियों को खण्डित जनादेश मिला है तो इन दलों ने गठबंधन राजनीति के जरिये सरकार चलाने का नुस्खा भी कामयाबी के साथ अपनाया है। इसी दौरान संसद तथा विशेष तौर पर सरकार पूंजीपति वर्ग की प्रबन्ध कमेटी के बतौर सीधे-सीधे सामने आये हैं। कांग्रेस के प्रभुत्व की समाप्ति तथा गठबंधन की राजनीति के प्रभावी भूमिका में आ जाने के बावजूद अमरीकी साम्राज्यवाद परस्त नीतियों को आगे बढ़ने में कोई भी बाधा पैदा नहीं हुयी है।

‘न्यू डेमोक्रेसी’ की व्याख्या उनके निष्कर्षों की चुगली करती है और जब वह भारतीय दलाल शासकों के बीच संभावित विभाजन के कारणों की चर्चा करती है तो माओ की परिभाषा व मूल्यांकनों को तिलांजली दे देती है।

II

भारतीय कृषि अर्द्धसामंती या पूंजीवादी

सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी के विभिन्न दस्तावेजों में भारतीय कृषि का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है वह कृषि के पूंजीवादी विकास, ग्रामीण क्षेत्रों में बदलते वर्गीय समीकरणों, किसानों के बाजार की ताकतों के गिरफ्त में होने का सार लिये हुए है।

“वे अधिकाधिक संख्या में जमीन से बेदखल हो रहे हैं जिससे भूमिहीन किसानों तथा खेतिहर मजदूरों की संख्या बढ़ रही है जो कि किसान जनता का बड़ा हिस्सा हैं। दूसरी ओर, किसान जनता की कीमत पर मुट्ठी भर जमींदार तथा धनी किसानों का एक हिस्सा फल-फूल रहे हैं। साम्राज्यवादियों द्वारा कृषि समेत अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में अपनी घुसपैठ तथा नियंत्रण मजबूत करने की मुहिम में कृषि भूमि के बड़े भूभाग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को दिये जा रहे हैं। **खाद्यान्न की खेती वाली जमीन घट रही है तथा जमीन की समस्या और उग्र हो रही है।**”

(कार्यक्रम रास्ता संविधान, 2004 की पार्टी कांग्रेस द्वारा पारित, पृष्ठ-1-8, जोर हमारा)

उपरोक्त उद्धरण में सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी किसान समुदाय के विभेदीकरण की चर्चा करते हुए कहती है कि भूमिहीन किसानों तथा खेतिहर मजदूरों की संख्या बढ़ रही है। वह कहती है कि ये भूमिहीन किसान आज किसान जनता का बड़ा हिस्सा हैं। खाद्यान्न की खेती वाली जमीन घट रही है। यहां साफ तौर पर दिखायी पड़ रहा है कि आप किसानों की जमीन से बेदखली के बाद उनके भूमिहीन किसान तथा खेतिहर मजदूरों में तब्दील होने की परिघटना को स्वीकार कर रहे हैं। अब सवाल है कि छोटे किसान व मध्यम किसानों की यह जमीन किसके हाथों में जा रही है? क्या यह प्रक्रिया कृषि में पूंजीवादी विकास की द्योतक नहीं है? हम जानते हैं कि जैसे-जैसे कृषि में पूंजीवादी विकास होता जाता है वैसे-वैसे किसानों की जमीन धनी किसानों व फार्मरों के हाथों में संकेंद्रित होती जाती है। यहां यह भी गौरतलब है कि अगर किसान जमीन से बेदखल हो रहे हैं तो वे जमीन के मालिक रहे होंगे न कि आसामी किसान। अगर जमीन जमींदार की दी हुई थी तो उससे बेदखली का सवाल ही नहीं उठता, हां तब आप यह कह सकते थे कि किसानों को लगान पर जमीन जोतने से वंचित किया जा रहा है। तब सवाल उठता कि जमींदार आसामी किसानों को जमीन से बेदखल करके क्या करेगा?

‘न्यू डेमोक्रेसी’ कहती है कि भूमिहीन किसान व खेतिहर मजदूर किसान जनता का बड़ा हिस्सा हैं। कितना बड़ा? यह वह नहीं बताती। वह यह भी नहीं बताती कि भूमिहीन किसान व खेत मजदूरों की अलग-अलग तादाद क्या है? इतना ही नहीं आप भूमिहीन किसान व खेत मजदूर को पर्याय के रूप में भी इस्तेमाल करते हैं। यह मार्क्सवादी वर्गीकरण में तोड़-मरोड़ करना है। चीनी पार्टी भी खेत मजदूर को किसानों से अलग प्रवर्ग मानती थी। हालांकि आपके ही अनुसार चीन की कृषि में पूंजीवादी विकास भारत की तुलना में कम था। आपको न तो तथ्यों से ही मुंह चुराना चाहिये और न ही वर्गीकरण में एक प्रवर्ग का दूसरे के साथ घालमेल करना चाहिये। इस सवाल को हम आगे लेंगे।

हम पायेंगे कि देश में कृषि मजदूरों की संख्या आज 10.15 करोड़ है और देहाती अर्द्ध-सर्वहारा की गिनती भी 5 करोड़ से अधिक है। जब हम देहाती सर्वहारा की बात कर रहे हैं तो हमारा आशय साफ है कि वह अपनी श्रम शक्ति बेचने को स्वतंत्र है तथा मूलतः अपनी श्रमशक्ति की बिक्री पर ही जिन्दा है। देहात का अर्द्ध-सर्वहारा वह है जिसके पास मामूली जमीन है तथा वह वर्ष भर मजदूरी, छोटी दुकानदारी, फड़-खोमचा लगाकर, दस्तकारी, दूध-बेचना इत्यादि गतिविधियों में लगकर अपनी जीविका कमाता है। इस देहाती अर्द्ध-सर्वहारा के पास कुल कृषि योग्य भूमि का 4% से भी कम है और यह कुल किसान आबादी का 40% से भी अधिक हैं। यहां जिसे हम अर्द्ध-सर्वहारा कह रहे हैं वह भूस्वामियों की जमीन किराये पर लेकर उन्हें भू-लगान हस्तांतरित करने वाले माओ के गरीब किसान नहीं हैं। भारत का देहाती सर्वहारा व अर्द्ध-सर्वहारा दोनों ही सामंती भूमि सम्बन्धों से मूलतः मुक्त हैं।

खैर... 'न्यू डेमोक्रेसी' को भारतीय कृषि में पूंजीवादी विकास के अन्य आयाम भी दिखायी देते हैं। वह सभी पहलुओं को अलग-अलग संज्ञान में लेती है। आंकड़ों से बच निकलकर तथा किंतु-परन्तु का सहारा लेकर वह भारतीय कृषि की समग्र तस्वीर बनाने से बच निकलती है। वह नयी परिभाषाएँ गढ़कर अपने जड़सूत्रवादी निष्कर्षों की हिफाजत करती है। आइये देखें!

“आज का भारत 1927 के चीन की तुलना में औद्योगिक रूप से अधिक विकसित है। इसका अर्थ है अपेक्षाकृत रूप से अधिक सशक्त बड़े पूंजीपति वर्ग से मुकाबला व उसके विरुद्ध युद्ध। इसके साथ ही, भारतीय सर्वहारा वर्ग की भूमिका भारतीय क्रांति में अवश्य ही अधिक है।

“विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण व उनके विस्तार तथा भारतीय जनता के बढ़ते हुए दबाव से तथा साम्राज्यवाद के हित में शासक वर्गों द्वारा अपनाए गए कथित भूमि सुधारों के परिणामस्वरूप भारत के कुछ हिस्सों में, हाल में, कुछ हद तक कृषि में पूंजीवादी तरीकों का विकास हुआ है। इसका अर्थ है कि कृषि में धनी किसान अर्थव्यवस्था के विकास ने बड़े पूंजीपतियों व बड़े सामन्तों को अपना शासन बनाए रखने के लिए धनी किसानों का सामाजिक आधार प्रदान किया है। इसी के साथ इससे देश के कुछ हिस्सों में खेतिहर मजदूरों के संघर्षों की बेहतर स्थिति उत्पन्न हुई है।”

(कार्यक्रम रास्ता संविधान, अ०भा०पा०का० 1996 व 2004 की पार्टी कांग्रेसों द्वारा पारित संशोधनों के साथ, पृष्ठ-2-14)

“भारतीय शासक वर्ग ने अर्द्धसामंती कृषि संबंधों को सुरक्षित व बरकरार रखा हुआ है और वे साम्राज्यवादी पूंजी के हितों के अनुकूल पूंजीवादी तत्वों को भी प्रोत्साहित करते रहे हैं। पंजाब जैसे हरित क्रांति के क्षेत्र इसके उदाहरण हैं जहां वर्तमान संकट का मूल कारण साम्राज्यवादियों द्वारा थोपे गए कृषि विकास के प्रारूप में निहित है”

(अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्य, जुलाई 2005, पृष्ठ-33)

“कृषि क्षेत्र में दिये जा रहे अनुदानों में क्रमशः कटौती, किसानों को व्यापारियों के हवाले कर कृषि उत्पादों की खरीद से सरकार का धीरे-धीरे हट जाना; इस सबसे धनी व मध्यम किसानों समेत समस्त किसान समुदाय बुरी तरह प्रभावित हुआ है। अनेक सरकारी योजनाएं जैसे- ग्रामीण क्षेत्र में कर्ज अथवा छोटी-मोटी विकास योजनाओं से जमींदारों व धनी किसानों के एक हिस्से ने फायदा उठाया है जिनका ग्रामीण संस्थाओं या सहकारी संस्थाओं पर नियंत्रण है।”

(वही, पृष्ठ-33)

“परन्तु मुक्ति पूर्व चीन के साथ हमारी महत्वपूर्ण असमानताएं भी हैं, जिनका असर दीर्घकालीन लोकयुद्ध की रणनीति पर पड़ता है। ये हैं : हम औद्योगिक रूप से ज्यादा विकसित हैं और हमारे मजदूर वर्ग की संख्या ज्यादा बड़ी है। देश के कुछ हिस्सों में खेती में पूंजीवादी तरीकों का विकास हुआ है, जिससे किसानों का विभेदीकरण बढ़ा है, खेतिहर मजदूरों की संख्या बढ़ी है, किसानों के सरकार विरोधी संघर्ष बढ़े हैं और इन क्षेत्रों में ग्रामांचलों में वर्गीय समीकरणों में भी कुछ परिवर्तन हुआ है”

(प्रतरोध संघर्ष के बारे में, 9 नवम्बर 2004, पृष्ठ-12)

उपरोक्त उद्धरणों में सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी स्वीकार करती है कि विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं, कथित भूमि सुधारों, साम्राज्यवादी पूंजी के अनुकूल पूंजीवादी तत्वों को प्रोत्साहन, हरित क्रांति, सरकारी विकास योजनाओं इत्यादि ने भारतीय कृषि में बदलाव ला दिये हैं। भारत के कुछ हिस्सों में, कुछ हद तक कृषि में पूंजीवादी विकास हुआ है। 'न्यू डेमोक्रेसी' इन बदलावों को इस हद तक का मानती है कि ग्रामांचलों में वर्गीय समीकरणों में बदलाव तक आ गए हैं। पर 'न्यू डेमोक्रेसी' वर्गीय समीकरणों में आए इन परिवर्तनों के चरित्र का जिक्र करने से हिचकिचाती है, कन्नी काटती है। हालांकि यह सारा मूल्यांकन यह इशारा करता है कि धनी किसान अब सामंतों-जमींदारों का सामाजिक आधार बन गए हैं। वह यह भी कहती है कि धनी किसानों के एक हिस्से का ग्रामीण संस्थाओं या सहकारी संस्थाओं में नियंत्रण तक है। वह कहती है कि कृषि में धनी किसान अर्थव्यवस्था का विकास हुआ है।

इन सारी बातों के पढ़कर वही कहावत याद आती है कि 'हाथी मर गया है' बोलने पर मौत की सजा होगी इसलिये पूरा विवरण तो प्रस्तुत किया जाय पर निष्कर्ष बोलने से बचा जाय। हम 'न्यू डेमोक्रेसी' से जानना चाहते हैं कि भारतीय कृषि के पूंजीवादी विकास का जो चित्र आपने प्रस्तुत किया है उसमें अब क्या कमी रह गयी है कि वह पूंजीवादी नहीं है? हम यह भी जानना चाहते हैं कि ग्रामांचलों में जो कुछ रणनीतिक महत्त्व के बदलाव आए हैं वे क्या हैं? और जिन क्षेत्रों में आपको ये बदलाव दिखायी पड़ रहे हैं वे कौन से क्षेत्र हैं?

हमारा मानना है कि जितने भी कारक आपने गिनाये हैं उनके व कुछ अन्य कारकों की बदौलत आज भारतीय कृषि का पूंजीवादीकरण हो चुका है। मगर आपने स्वयं के व्यावहारिक बोध को आंकड़ों के साथ मिलाया होता तो आप इसे स्पष्टतः देख सकते थे।

भारतीय कृषि में बुर्जुआ वर्ग द्वारा किये गये क्रमिक सुधारों की बदौलत आज भारतीय कृषि का पूंजीवादीकरण हो चुका है। आज भारतीय कृषि मुख्यतः बाजार तंत्र के अधीन है। 1997-98 में सकल बोये गए क्षेत्रफल में से 75% पर उन्नत किस्म के बीजों का इस्तेमाल किया गया। गेहूँ की खेती के 86.1%, धान के 74.2%, ज्वार के 81.8%, बाजरा के 72.2% और मक्का के 57.1% क्षेत्रफल पर वर्ण संकर बीजों का इस्तेमाल किया गया। बाजार से खरीदे गए बीजों का। आज जानवरों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा का हिस्सा कृषि कार्यों में खपने वाली ऊर्जा का मात्र 9.89% रह गया है। आर्थिक सुधारों के दशक में भारत में 20 लाख नये ट्रैक्टरों की बिक्री हुयी। 2.50 लाख ट्रैक्टर हर साल भारतीय कृषि में खपने लगे हैं। 2000-01 में भारत में 1 करोड़ 47 लाख टन रासायनिक खाद का उत्पादन हुआ और 20.9 लाख टन का आयात। यानी भारतीय कृषि लागतों में बाजार का हस्तक्षेप निर्णायक हो गया है।

भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण 1998-99 के अनुसार सकल बोया गया क्षेत्रफल 18 करोड़ हेक्टेयर था, जिसमें से 5.60 करोड़ हेक्टेयर यानी एक तिहाई पर नकदी फसलों की खेती हो रही थी, यानी एक तिहाई क्षेत्रफल पर सीधे बाजार के लिए खेती की जा रही है।

जहां तक खाद्यान्न की पैदावार का सवाल है तो आज वह भी सिर्फ उपभोग के लिए पैदा नहीं किया जा रहा है। ग्रामीण भारत की आबादी के कुल चावल उपभोग का 62 फीसदी तथा गेहूं उपभोग का 55.26 फीसदी बाहरी उत्पाद से आता है।

भारतीय कृषि की अन्य विशेषता यह है कि इससे पैदा होने वाले बेशी मूल्य में भू-लगान का हिस्सा काफी कम हो गया है। भारतीय राजसत्ता के बजट (केंद्रीय व प्रांतीय) में भू-राजस्व का योगदान नगण्य है। यह समग्र राष्ट्रीय राजस्व का मात्र 0.6 फीसदी है।

आज भारत की 90 फीसदी से ज्यादा भूमि खुद काश्रत है उस पर या तो मालिक किसान खुद खेती कर रहे हैं या भू-स्वामी उजरती श्रम के इस्तेमाल से इस पर खेती करवा रहे हैं। इतना ही नहीं '90 के दशक में विपरीत किरायेदारी (reverse tenancy) की प्रवृत्ति भी अस्तित्व में आने लगी है। अब 25 एकड़ से बड़ी भू-जोत वाले किसान किराये पर जमीन ले रहे हैं।

आज कृषि के क्षेत्र में दिखायी देने वाले संकट पूंजीवादी संकट ही हैं। 'न्यू डेमोक्रेसी' ग्रामांचलों में आए वर्गीय समीकरणों में बदलावों का जिक्र कर रही है वे और कुछ नहीं धनी किसानों का दुश्मन वर्गों की पांत में शामिल हो जाना है। भारतीय बुर्जुआ वर्ग और ग्रामीण भारत के धनी किसान व फार्मर आज समान हितों से बंध चुके हैं। ऐसा कृषि के पूंजीवादीकरण की बदौलत ही हुआ है। आज पुराने समाज के वर्ग, सामंत व जमींदार, या तो खत्म हो गये हैं या उन्होंने स्वयं को पूंजीवादी फार्मरों में तब्दील कर लिया है। हमें इस सच्चाई को स्वीकार करना चाहिये।

'न्यू डेमोक्रेसी' कहती है कृषि में पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप खेतिहर सर्वहारा के संघर्ष की स्थितियां बेहतर हुयी हैं। उसके विवरण में भी दिखायी देता है कि आज किसानों के संघर्ष मुख्यतः बाजार की ताकतों के खिलाफ हैं।

“वे जमीन और मजदूरी के लिए, पिछड़ेपन के विरोध में और विकास के लिए, कृषि लागतों के दाम में बढ़ोत्तरी के विरोध में और कृषि उत्पादों के लाभकारी मूल्यों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। गरीब किसानों और खेतिहर मजदूरों के जमीन और मजदूरी के लिए संघर्ष इन सभी संघर्षों में सबसे ज्यादा उल्लेखनीय हैं।” (वही, पृष्ठ-55)

“एक अन्य उल्लेखनीय संघर्ष पंजाब के किसानों ने किया जिसने सरकार को मजबूर कर दिया कि वह अपने फैसले को बदलकर पंजाब के किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर धान खरीदे। एक और अन्य महत्वपूर्ण संघर्ष आंध्र प्रदेश में बिजली के दामों में बढ़ोत्तरी के विरुद्ध तत्कालीन चन्द्रबाबू नायडू सरकार के खिलाफ हुआ जनसंघर्ष था। शिक्षण संस्थाओं के निजीकरण के खिलाफ छात्रों के संघर्ष, श्रम कानूनों में परिवर्तनों के खिलाफ मजदूरों के संघर्ष, कर्जों के खिलाफ किसानों के संघर्ष, पानी के निजीकरण के खिलाफ संघर्ष तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को जमीन दिए जाने के कारण विस्थापन के खिलाफ संघर्ष जनता द्वारा लड़े गए महत्वपूर्ण संघर्षों में थे।” (वही, पृष्ठ-56)

“सिंचाई में कटौती के खिलाफ राजस्थान के किसानों का संघर्ष तथा कृषि उत्पादन के लाभकारी मूल्यों के लिए हरियाणा व पश्चिमी उ०प्र० के किसानों का संघर्ष किसानों के कुछ अन्य उल्लेखनीय संघर्षों में हैं।” (वही, पृष्ठ-56)

यहां दिखायी देता है कि किसानों के जिन संघर्षों का विवरण आप उल्लेखनीय समझते हैं वो सभी बाजार तंत्र के खिलाफ किसान समुदाय द्वारा किये जा रहे संघर्षों के अलावा कुछ नहीं हैं। आप अपने नव जनवादी क्रांति के कार्यक्रम को जीवनदान देने के लिए बस इसमें 'जमीन के लिए संघर्ष' का चिप्पा लगा देते हैं। आपके निष्कर्षों व अपने ही विवरण की असंगति में इस बात का भय दिखायी देता है कि हाय! अगर बाजार की ताकतें इसी तरह काम करती रहीं और वर्गीय समीकरण बदलते रहे तो हमें अपनी कृषि क्रांति का कार्यक्रम बदलना पड़ सकता है। ये रवैया मजदूर वर्ग को पूंजीपति वर्ग का पिछलग्गू बना देने का रवैया है। जिस रवैये की मुखालफत करके ही रूसी व चीनी क्रांति आगे बढ़ पायी थीं। हमारा अनुरोध है कि आपको जड़सूत्रवादी हठधर्मिता छोड़कर कृषि में पूंजीवादी विकास के आंकड़ों की तफसील में जाना चाहिये। साथ ही आपको पूंजीवादी विकास की जहां पर और जिस भी हद तक अभिव्यक्तियां दिखायी देती हैं उन्हें स्पष्टता के साथ रखना चाहिए। साथ ही चीनी क्रांति के साथ आज के भारत की परिस्थितियों की तुलना करते वक्त आंकड़ों को भी संज्ञान में लेना चाहिये।

III

मजदूर वर्ग के बारे में

जैसा कि हमने पहले कहा है 'न्यू डेमोक्रेसी' खेतिहर मजदूर प्रवर्ग का अलग से भी उल्लेख करती है और भूमिहीन किसान के पर्याय के रूप में भी।

“उत्पीड़ित जातियों के लोग ज्यादातर गरीब किसान और खेतिहर मजदूर (भूमिहीन किसान) हैं जो सामंती शोषण और उत्पीड़न का शिकार हैं” (नीतिगत प्रस्ताव, अ०भा०पा०का० 2004 द्वारा स्वीकृत, पृष्ठ-9)

यह घालमेल गंभीर भटकाव का द्योतक है। 'न्यू डेमोक्रेसी' गरीब किसान तथा खेतिहर मजदूर प्रवर्गों का ही अधिकांशतः जिक्र करती है मगर यहां पर जिस तरह भूमिहीन किसान को खेत मजदूर माना गया है वह गलत है। यह प्रवृत्ति तब ज्यादा गंभीर हो जाती है जब आप ग्रामीण सर्वहारा व अर्द्ध-सर्वहारा की संख्या का कोई भी उल्लेख नहीं करते। इस घालमेल के बाद ग्रामीण समुदाय समग्र रूप से किसान हो जाता है।

माओ द्वारा किए गये वर्गीय विश्लेषण में खेतिहर मजदूर वे हैं जो भूमि व औजारों से वंचित हैं और वे जीवन यापन के लिए अपने श्रम की बिक्री पर निर्भर हैं। इनमें से कुछ के पास मामूली जमीन या औजार हो भी सकते हैं।

माओ के अनुसार 'कुछ गरीब किसानों के पास खेती की जमीन का एक हिस्सा ही खुद का होता है, उनके पास खेती के औजार भी पूरे नहीं होते; अन्य गरीब किसानों के पास जमीन बिल्कुल नहीं होती और खेती के औजार अपूर्ण मात्रा में होते हैं। आमतौर पर गरीब किसानों को खेती की जमीन लगान पर लेनी होती है और दूसरों को लगान व सूद देकर अथवा अपने श्रम को भाड़े पर उठाकर उन्हें दूसरों के शोषण का शिकार बनना पड़ता है'।

माओ गरीब किसान को ग्रामीण क्षेत्र का अर्द्ध-सर्वहारा मानते हैं। अगर हम भूमिहीन किसान प्रवर्ग का इस्तेमाल करें भी तो माओ के गरीब किसान की आबादी का बड़ा हिस्सा वही हैं। माओ के अनुसार गरीब किसान के कुछ ही हिस्से के पास जमीन होती है ज्यादा बड़ा हिस्सा भूमि से वंचित होता है। गरीब किसान (भूमिहीन किसान) तो तब भी ठीक है लेकिन खेतिहर मजदूर (भूमिहीन किसान) एकदम गलत। 'न्यू डेमोक्रेसी' यह भी कहती है कि किसान समुदाय अधिकाधिक संख्या में जमीन से बेदखल होकर भूमिहीन किसानों व खेतिहर मजदूरों में तब्दील हो रहे हैं।

आपके मूल्यांकन में कहीं गरीब किसान व खेतिहर मजदूर, कहीं भूमिहीन किसान व खेतिहर मजदूर तथा कहीं गरीब किसान और खेतिहर मजदूर (भूमिहीन किसान) हो जा रहा है। यह बिला वजह नहीं है क्योंकि आपको ग्रामीण क्षेत्र में ऐसे लोग नहीं दिखायी देते जिनके पास जमीन नहीं है और वे लगान पर जमीन जोतने का काम करते हैं। आपको देहात में या तो अपनी छोटी जोत का मालिक दिखायी देता है या विभेदीकरण के फलस्वरूप जमीन से वंचित देहाती सर्वहारा इसलिए आप भूमिहीन किसान प्रवर्ग को बीच में लेकर आते हैं। यह भूमिहीन किसान खेतिहर मजदूर व गरीब किसान से किस प्रकार अलग है या किससे क्या समानता रखता है? आप व्याख्या नहीं करते। दरअसल ग्रामीण सर्वहारा ही आपका भूमिहीन किसान है क्योंकि इससे ग्रामीण क्षेत्रों में वर्गीय समीकरणों में आ रहे बदलाव धुंधले हो जाते हैं। इससे ग्रामीण सर्वहारा की बढ़ती तादाद आपकी निगाहों से ओझल हो जाती है। ग्रामीण सर्वहारा के एक हिस्से को ही आप भूमिहीन किसान सम्बोधित करते हैं।

आपके अनुसार ही आज जमीन से बेदखल किसान खेतिहर सर्वहारा और भूमिहीन किसान बन जा रहे हैं और ये देहात का बड़ा हिस्सा हैं। क्या आपके गरीब किसान प्रवर्ग में ऐसे लोग नहीं हैं जिनके पास जमीन नहीं है, अगर हैं तो वो भूमिहीन किसान से किस मायने में भिन्न हैं। यह भिन्नता इसके अलावा कुछ हो ही नहीं सकती कि दरअसल आप जिसे भूमिहीन किसान कहते हैं वह ग्रामीण सर्वहारा ही है। मगर जब आप विभेदीकरण की बात करेंगे तो कोष्ठक हटाकर व लगा कर करेंगे। यह कोष्ठक आपको कई समस्याओं से बचा लेता है।

दरअसल शब्दों के इस घालमेल से आपको जड़सूत्रवादी बने रहने व पहले से तय रणनीतिक लाइन से चिपके रहने में मदद मिलती है। आज भारत में खालिस देहाती सर्वहारा 10.50 करोड़ बनता है तथा औद्योगिक सर्वहारा के साथ मिलकर यह कुल कामगार आबादी का आधा बन जाता है। इस तथ्य को अनदेखा करना मजदूर वर्ग को बुर्जुआ वर्ग का पिछलग्गू बनाना है।

कृषि सर्वहारा के बाद अब अगर शेष सर्वहारा आबादी की भी बात करें तो 'न्यू डेमोक्रेसी' के दस्तावेजों में उसका विवरण न के बराबर है। किसान वर्णन में सर्वहारा नेतृत्व की छाँक के रूप में। इतना कम कि उसके शब्दों तक को गिना जा सकता है।

क्रांति चाहे नव जनवादी हो या समाजवादी दोनों में ही सर्वहारा वर्ग नेतृत्वकारी भूमिका में होता है। कम्युनिस्ट पार्टी सिर्फ और सिर्फ सर्वहारा वर्ग की पार्टी है और तदनु रूप अपनी रणनीति व रणकौशल निर्धारित करती है। किसी भी क्रांति में कम्युनिस्ट पार्टी का उद्देश्य सर्वहारा वर्ग की अधिकाधिक संख्या को पार्टी में भर्ती करना होना चाहिये। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी दूसरी पार्टी कांग्रेस के बाद से इसी दिशा में कार्य किया था। अपनी पांचवीं राष्ट्रीय कांग्रेस के समय चीनी कम्युनिस्ट पार्टी अपनी 57,900 की सदस्य संख्या के साथ 28 लाख मजदूरों तथा 90 लाख किसानों का सीधा नेतृत्व करती थी। हुनान, छाडशा, आनघ्वान, श्वेइकओसान इत्यादि में पार्टी की स्थापना के बाद से ही खदान मजदूरों, रेलवे मजदूरों, औद्योगिक मजदूरों के बीच जबर्दस्त कार्य किया गया। का० माओ स्वयं 1922 में 'श्रमिक संघ' की हुनान शाखा के अध्यक्ष चुने गये थे।

हम यहां पर कम्युनिस्टों के बीच सर्वमान्य सी लगने वाली बातों के उपदेश नहीं दे रहे हैं। ऐसा हम इसलिए कह रहे हैं कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में चीनी रास्ते की कसम सुबह-शाम खाने वाले सभी पार्टी संगठनों ने सर्वहारा वर्ग को उपेक्षित छोड़ दिया है। देश के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों में इन पार्टी संगठनों की उपस्थिति लगभग न के बराबर है। बल्कि कई पार्टी संगठनों ने तो अपने कार्यकर्ताओं व संसाधनों के अधिकांश हिस्से को न मजदूर न किसान बल्कि आदिवासियों में लगा रखा है।

आज नव जनवादी क्रांति को भारतीय क्रांति की मंजिल मानने वाले अधिकांश संगठन इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि क्रांति पूर्व चीन की तुलना में भारत का पूंजीवादी विकास कहीं ज्यादा है। फिर भी इन पार्टी संगठनों का सर्वहारा वर्ग को संगठित करने का रुझान चीनी पार्टी की तुलना में बेहद कम है। इसकी ढेरों अभिव्यक्तियां हैं और सबसे प्रमुख अभिव्यक्ति यही है कि ये पार्टी संगठन सर्वहारा वर्ग की पार्टी भर्ती के लिये लगभग न के बराबर प्रयास कर रहे हैं। मजदूर वर्ग को अर्थवाद, कानूनवाद व संशोधनवादी पार्टियों के चंगुल से निकालकर क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन आंदोलन के निर्माण की बातें महज दस्तावेजों तक सिमटी हुयी हैं। इसके लिए किये जाने वाले प्रयास काफी कम हैं।

‘न्यू डेमोक्रेसी’ भी इसी नाव में सवार संगठन है। हालात ये हैं कि आपने सर्वहारा वर्ग की गिनती करना भी गवारा नहीं किया। 1996 के बाद 2004 में आपकी पार्टी कांग्रेस होती है और आप सर्वहारा वर्ग की गिनती करना भी मुनासिब नहीं समझते। समग्र किसान समुदाय की तादाद का मोटा अनुमान लगाने का प्रयास तो दस्तावेजों में है मगर सर्वहारा वर्ग की संख्या जानने का कोई भी प्रयास नहीं है। क्या ऐसा किये बिना क्रांति की रणनीति व रणकौशल निर्धारित किये जा सकते हैं। चीनी पार्टी व रूसी पार्टी दोनों ही सर्वहारा वर्ग व किसान समुदाय की संख्या को अपने अध्ययन व संज्ञान में लेती थीं।

सर्वहारा भारतीय क्रांति का न सिर्फ नेता है बल्कि वह इसकी प्रमुख लड़ाकू शक्ति भी बन चुका है। भारत में 1 लाख 34 हजार फैक्ट्रियां हैं इनमें 1 करोड़ से ज्यादा औद्योगिक मजदूर काम करते हैं।

द्वितीयक क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की संख्या 4 करोड़ है। तृतीयक क्षेत्र में 5 करोड़ मजदूर कार्यरत हैं। प्राथमिक क्षेत्र में खनन कार्यों में करीब 20 लाख मजदूर कार्यरत हैं। कुल मिलाकर कृषि कार्यों के बाहर कार्यरत सर्वहारा की संख्या 9 करोड़ के करीब है।

देश में खेत मजदूरों की संख्या 10.50 करोड़ है। जंगलात, मत्स्यपालन, पशुपालन, बागान व सम्बद्ध गतिविधियों में भी 50 लाख से अधिक मजदूर कार्यरत हैं।

देश में विभिन्न प्रकार के मजदूरों की संख्या किसी भी गणना से, अभिजात मजदूरों को छोड़कर 20 करोड़ से अधिक है। कुल मिलाकर सर्वहारा वर्ग भारत का न केवल सबसे क्रांतिकारी वर्ग है बल्कि आकार में भी वह सबसे बड़ा है। भारत की कुल कामगार आबादी का आधा। अपनी विशाल संख्या से वह भारतीय क्रांति का चरित्र तय कर दे रहा है— भारत की भावी क्रांति सर्वहारा समाजवादी क्रांति होगी न कि किसान क्रांति।

उपरोक्त तथ्यों को संज्ञान में लेना आवश्यक है। ‘न्यू डेमोक्रेसी’ आंकड़ों की तफसील से बचना चाहती है। वह तमाम किंतु परन्तु के साथ भारतीय समाज की सच्चाईयों को स्वीकार करती है परन्तु निष्कर्ष निकलने से भयभीत है। निष्कर्ष कम्युनिस्ट बिरादरी में उसका ‘हुक्का-पानी’ बंद करवा देंगे।

IV

दीर्घकालिक युद्ध हम करके रहेंगे

सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी जब चीन के साथ भारत की समानताएं गिनाती है तो उसे आधा पृष्ठ खर्च करना पड़ता है। जब वह भिन्नताएं गिनाती है तो तीन पृष्ठ काले करने पड़ते हैं। भिन्नताओं के विवरण में वह कहती है— भारत 1927 के चीन की तुलना में औद्योगिक रूप से ज्यादा विकसित है। कृषि में पूंजीवादी तरीकों व ‘धनी किसान अर्थव्यवस्था’ का विकास हुआ है। कितना? वह नहीं बताती या बताना नहीं चाहती। वह कहती है 1927 के चीन की तुलना में रेल, सड़क व संचार माध्यमों की स्थिति ज्यादा बेहतर है। यहां चीन के समान न तो युद्ध सामन्त हैं, न भू-सामन्तों के पास अपनी निजी सेनाएं हैं। चीन में इस्तेमाल करने के लिए किसी किस्म की कोई संसदीय प्रणाली अथवा लोकतांत्रिक अधिकार न थे इत्यादि। फिर भी वह दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति में अड़े रहने की घोषणा करती है। वह कहती है कि ये भिन्नताएं सिर्फ दीर्घकालिक लोकयुद्ध की भारतीय विशिष्टताओं को बताती हैं।

विवरण व निष्कर्षों के बीच मौजूद अंतर्विरोध से लगता है कि कहीं भारतीय ‘दीर्घकालिक लोकयुद्ध’ की विशिष्टता ‘आम बगावत’ तो नहीं है? अगर आप चीन के साथ भिन्नताओं का तथ्यपरक विश्लेषण करें और रूस को भी इसमें शामिल कर लें तो पाएंगे कि कई मामलों में आज का भारत न सिर्फ क्रांति पूर्व चीन से अलग है और क्रांति पूर्व रूस के ज्यादा करीब, बल्कि कुछ मायनों में यहां सर्वहारा वर्ग की आम बगावत द्वारा सत्तादखल के लिए रूस से बेहतर स्थितियां मौजूद हैं। ऐसे में ‘प्रतिरोध-संघर्ष’ की थीसिस पर दीर्घकालिक लोकयुद्ध के रास्ते सत्ता पर कब्जा करने की बात जड़सूत्रवादी हठधर्मिता ही है।

भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के घटक पीपुल्स वार ने दीर्घकालिक लोकयुद्ध की अपनी रणनीति को सही ठहराने के लिए नयी प्रस्थापना रखी थी कि केन्द्रीकृत राज्य मशीनरी से युक्त बड़े दुश्मन, जो कि आधुनिक संचार तंत्र व अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित आधुनिक सेना से लैस है, को धीरे-धीरे कुतर-कुतर कर टुकड़ों में ही नष्ट किया जा सकता है। सी०पी०आई० (एम०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी अपने सशस्त्र संघर्ष की अवधारणा में ऐसी कोई भी नायाब प्रस्थापना नहीं देती। वह सिर्फ तथ्यों का घालमेल करती है। इसका कारण है। दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति को भारतीय क्रांति का रास्ता मानने वाले संगठन जानते हैं कि चीन में सामंती-युद्ध सरदारों के बीच चलने वाले निरंतर युद्ध व एकीकृत राजसत्ता का अभाव उन सभी कारणों में सबसे महत्वपूर्ण था जिसने छोटी-छोटी लाल सत्ताएं बनाना व कायम रखना आसान बनाया था। जब इन्हें भारत में इस महत्वपूर्ण कारक की एकदम उलट स्थिति दिखाई देती है तो ये नई प्रस्थापनाएं गढ़ने या तथ्यों के घालमेल को अभिशप्त होते हैं। ये मार्क्सवादी विज्ञान के चश्मे से भारत की परिस्थितियों को देखने के बजाय चीनी रास्ते के चश्मे से आंखें ही ढंक लेते हैं। आइये देखें!

“भारत की संचार व्यवस्था, रेल, रोड और हवाई रास्ते भी बेहतर विकसित हैं जो भारतीय राजसत्ता को, अपेक्षाकृत बहुत कम समय में, अपनी शक्तियों को बड़ी तादाद में एक जगह केन्द्रित करने की क्षमता देते हैं। यहां अपनी सेनाओं को चलाने वाले युद्ध सरदार नहीं हैं।”

“भारत में एक संसदीय व्यवस्था चल रही है और जनता के पास कुछ जनवादी अधिकार हैं। अतः भारत में हथियारबंद क्रांति और हथियारबंद प्रतिक्रांति एक दूसरे के सामने प्रत्यक्ष रूप से नहीं खड़ी हैं और संसदीय व्यवस्था और जनवादी अधिकारों के बारे में भ्रम दूर करने का काम हमारे सामने है”

(प्रतिरोध संघर्ष के बारे में, पृष्ठ-12)

“इनमें से बेहतर संचार व्यवस्था, भारतीय राज्य की अपनी शक्तियों को एक स्थान पर केन्द्रित करने की क्षमता, संसदीय व्यवस्था की उपस्थिति और सामाजिक आर्थिक परिवर्तन और सबसे ज्यादा कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की कमजोरी व उनके नेतृत्व में जनमुक्ति सेना का न होना, दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति को आगे बढ़ाने में हमारे प्रयासों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर रहे हैं।”

(वही, पृष्ठ-13)

उद्धरणों में उन महत्वपूर्ण कारणों को चिह्नित किया गया है जो चीन से भारत को अलग करते हैं। हम कहें कि उपरोक्त कारण भारत में दीर्घकालिक लोकयुद्ध के विकास में बाधाएँ खड़ी करते हैं इससे पहले ही सी०पी०आई० (ए०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी इस बात को जानती है। पर वह इससे सही निष्कर्ष निकालकर दीर्घकालिक लोकयुद्ध की अपनी रणनीति को बदलने के बजाय तथ्यों को मनोगत तरीके से देखना ठीक समझती है।

“यद्यपि भारत में शासक वर्गों के अंतर्विरोध, कलह व विभाजन बढ़ रहे हैं और साम्राज्यवादी शक्तियों की प्रतिस्पर्धा में शासक वर्गों की पार्टियाँ लगातार विभाजित हो रही हैं, परन्तु इसके साथ ही साथ इन्होंने अभी तक सैन्य मुठभेड़ों का स्थान नहीं लिया है, न ही वे प्रशासन मशीनरी के विच्छिन्न होने के स्तर तक पहुंचे हैं। बहरहाल, शासक वर्गों के अंतर्विरोध लगातार विकसित होंगे और भारत में राजनीतिक व आर्थिक संकट गहरा होने के साथ-साथ, भारतीय क्रांति के आगे बढ़ने के साथ-साथ और विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के अंतर्विरोध अधिक गहरे होने के साथ-साथ वे कब, कौन सा रूप अख्तियार करते हैं, इस पर अत्यंत सावधानी से नजर रखना आवश्यक है। हमें केन्द्र व प्रान्तों के मध्य अन्तर्विरोध और उनकी सशस्त्र सेनाओं के अन्तर्विरोधों पर गहरी नजर रखनी है। उदाहरण के लिए, इस समय कश्मीरी व नागा अपने आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए केन्द्र के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष कर रहे हैं।”

(कार्यक्रम रास्ता संविधान, अ०भा०पा०का० 2004 द्वारा पारित, पृष्ठ-2-5)

यहां साफ तौर पर दिखायी दे रहा है कि ‘न्यू डेमोक्रेसी’ भारत के शासक वर्गों के साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतिस्पर्धा में बंटे होने का दिवा स्वप्न देख रही है। क्योंकि उसने अपने लिए ‘दीर्घकालिक लोकयुद्ध’ का रास्ता तय कर लिया है। जैसा कि हमने लेख की शुरुआत में कहा है कि ‘न्यू डेमोक्रेसी’ एकाधिक स्थानों पर यह स्वीकार करती है कि भारतीय शासक वर्ग अपने घरेलू एवं विदेश नीति के मामले में एकताबद्ध है। वह और उसकी सभी राजनीतिक पार्टियाँ यहां तक कि क्षेत्रीय पार्टियाँ भी इन मामलों में एकताबद्ध है। हम यह भी कह आये हैं कि ‘न्यू डेमोक्रेसी’ ने कहीं पर भी यह नहीं बताया है कि भारतीय शासक वर्गों की कौन-कौन सी राजनीतिक पार्टियाँ किस साम्राज्यवादी देश की हित साधक हैं। हम सिर्फ यही कहेंगे कि ‘न्यू डेमोक्रेसी’ को अपने मूल्यांकन में सुसंगतता लाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने के लिए नजर रखना ही नहीं पहले आंखें खुली रखना जरूरी होगा। साम्राज्यवादी शक्तियों की प्रतिस्पर्धा में शासक वर्गों की पार्टियाँ लगातार विभाजित हो रही हैं, इस मूल्यांकन को आप खुद अपने ही दस्तावेज में रद्दी को टोकरी में डाल चुके हैं। संग्रम, राजग एक के बाद एक अमेरिकी साम्राज्यवाद परस्त नीतियाँ लागू करने में एक-दूसरे से आगे निकल जाना चाहते हैं। आपके ही शब्द हैं। जहां तक केन्द्र-प्रांत के अंतर्विरोधों की बात है, वह भी कहीं से अलग-अलग साम्राज्यवादी ताकतों के अंतर्विरोधों को अभिव्यक्त नहीं करते और ये अंतर्विरोध तलख हैं भी नहीं। सभी प्रांतों के मुख्यमंत्री चाहे वह किसी भी क्षेत्रीय दल या राष्ट्रीय दल के हों आर्थिक नीतियों व विदेश नीति के मामले में मतभेद तो दूर उल्टे सभी साम्राज्यवादी देशों की यात्रायें कर उन्हें अपने प्रदेशों में न्यौत रहे हैं। इनके बीच सशस्त्र संघर्ष की परिकल्पना गलत ही नहीं, हास्यास्पद भी है।

यहां हमने सी०पी०आई० (ए०एल०)-न्यू डेमोक्रेसी के साथ अपने प्रमुख मतभेदों को रखा है। इसके अलावा भी अन्य मतभेद के बिंदु हैं जिन्हें हमने यहां छोड़ दिया है।

कुल मिलाकर सी०पी०आई० (ए० एल०)- न्यू डेमोक्रेसी ने भारतीय परिस्थितियों का लेखा-जोखा लेकर अपने दस्तावेजों के माध्यम से दीर्घकालिक लोकयुद्ध व कृषि क्रांति का ऐसा चित्र बनाने का प्रयास किया है जिसमें से हजारों छेदों से बदली हुयी परिस्थितियाँ झांकती हैं। अपने निष्कर्षों की चिप्पी जब इन छेदों पर चिपकायी जाती है तो यह चित्र और भद्दा हो जाता है। हमारा सिर्फ इतना ही कहना है कि इस पार्टी संगठन को अपने ही लेखे-जोखे व निष्कर्षों के बीच तारतम्य बिठाना चाहिए। तब आप पायेंगे कि आपको तथ्यों से मुंह चुराकर निष्कर्षों की आड़ में अपनी क्रांति के कार्यक्रम को छिपाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

